श्रेया शाण्डिल्य

परास्नातक हिन्दी, द्वितीय वर्ष-बसन्त कन्या महाविद्यालय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

समाज का संघर्ष: सशक्तिकरण या संतुलन?

।। ॐ ।।

सर्वमंगल मांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके। शरण्ये त्रयम्बके गौरी नारायणी नमोस्तुते।।

सर्वमंगल मांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके। शरण्ये शुभदे माते जन्मभूमि नमोस्तुते।।

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा सृजन का महीना है... ब्रह्मा जी ने श्रृष्टि का निर्माण इसी समय शुरु किया था... यह पुनः निर्माण का भी महीना है... कहते हैं मनु ने भी प्रलयकाल के बाद इसी समय पृथ्वी पर जीवन का पुनर्निर्माण आरंभ किया था। और सबसे आवश्यक, यह शक्ति का महीना है... वह शक्ति जिसका प्रतिनिधित्व समय के आरंभ से नारी करती आ रही है।

'या देवी सर्वभूतेषु विद्या रूपेण संस्थिता"

क्योंकि यदि आप देवी विद्या के रूप में नहीं होंगी तो ब्रह्मा भी निर्माण नहीं कर पाएंगे।

'या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मी रूपेण संस्थिता"

चुकी आपके इस रूप के अभाव में नारायण भी संसार के संचालन में असमर्थ हो जाते हैं।

'या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता"

और आपके अभाव में तो रक्षक शिव भी शव बन जाते हैं।

इसीलिए हे सभी की पूरक देवी

' नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः"

हमारी भारतीय संस्कृति संभवतः इकलौती ऐसी संस्कृति का पालन एवं प्रतिनिधित्व करती आ रही है जहां परमब्रह्म को हम दो समान रूपों में पूजते हैं... पुरुष तथा प्रकृति। समान इसलिए क्योंकि ना केवल दोनो की अपनी अपनी महत्ता है बल्कि दोनो एक दूसरे के पूरक भी हैं। किसी एक का अभाव भी संतुलन बिगाड़ विनाशकारी परिणाम लाने में सक्षम है। अभी अभी हमने नवरात्रि का पावन पर्व मनाया जहां शक्ति रूपी स्त्री दैवीय रूप में पूजी गईं। यह शक्ति हमारे इर्द गिर्द हमारे दैनिक जीवन में विभिन्न रूप में उपस्थित हैं जिनकी भूमिका की उपस्थिति हमारे अस्तित्व का आधार हैं। आज के विषय को ध्यान में रखते हुए हम एक प्रश्न पूछते हैं कि नारी किसे कहते हैं?

संधि विच्छेद कर हमें अर्थ मिलता है – ना+अरी। अरी अर्थात शत्रु। यानी जिसका कोई शत्रु ना हो उसे नारी कहा गया।

महिला किसे कहेंगे? महि यानी पृथ्वी। जो श्रृजन की सबसे बड़ी उदाहरण है। श्रृजन में सबसे अधिक सक्षम है। अब जिनमे महि से मिलते ऐसे गुण हो उसे महिला ही तो कहेंगे ना...

अच्छा बताइए स्त्री किसे कहते हैं? जो स्तर को और अधिक ऊंचा ले जाए वह स्त्री कहलाए।

यह है हमारी संस्कृति की सीख। जहां स्त्री और शक्ति सदैव ही एक दूसरे के पर्याय रहे हैं। जहां स्त्री और पुरुष एक दूसरे के प्रतिद्वंदी नहीं बल्कि पूरक रहे हैं। जहां आ तथा ई में भेद नहीं बतलाया गया। जहां होता तथा होती एक ही जीवन के दो समान सत्य हैं। जन्म होता है.... मृत्यु होती है। आज भले ही किसी आवेदन पत्र में पिता या पति का नाम आवश्यक है परंतु इतिहास में एक वह भी समय था जहां महानायकों को हम अंजनीपुत्र हनुमान या देवकीनंदन या यशोदानंदन के नाम से जानते हैं। और हम स्वयं काशी के वासी हैं... यहां तो जयकारे भी हम 'नमः पार्वती पतयै हर हर महादेव" कर लगाते हैं। समझने वाली बात यह है की जो स्त्री और शक्ति हमारी समझ से एक दूसरे के पर्याय रहे हैं उसे ही आज हम विशेषण के रूप में क्यों उसकी चर्चा कर रहें हैं? हमारी विकसित मानसिकता में कब ऐसी विकृति आ गई की आज जगह जगह शक्ति के पर्याय की ही सशक्तिकरण की आवश्यकता आन पड़ी? अब घोर कलियुग कह कर समय पर इसका दोष डालने से बेहतर है एक तर्कसंगत उत्तर जानना।

दरअसल यह समस्या उत्पन्न हुई मध्यकालीन समय में जब हमारे देश में इस्लामिक आक्रमण आरंभ हुआ। हम यह बात पूर्णता स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हम इसका दोष किसी भी धर्म के आधार पर उन पर नहीं मढ रहे हैं। दरअसल हम वही सीखते हैं, उसी का पालन करते हैं जो हमारी संस्कृति हमें सिखाते आ रही है। अब हमारी संस्कृति है जहां परम ब्रह्म ने अपने को दो रूपों में विभाजित किया और वे दो रूप स्त्री और पुरुष के रूप थे जो एक दूसरे के पूरक थे और इसीलिए उन दोनों का स्तर भी समान था। परंतु हमारे आक्रमणकारी – फिर चाहे वह इस्लामिक आक्रमणकारी हो या फिर अंग्रेज़ी व्यापारी – यह सब अब्राहमिक धर्म की संस्कृति को मानते हैं। इनके अनुसार भगवान या almighty ने पहले एडम नामक पुरुष की संरचना की फिर उसे उसके उबाहट से निजात देने के लिए उसके पसलियों से इव नामक स्त्री का निर्माण किया। स्त्री का नाम इव पड़ा जो evelish का पर्याय था। Evelish यानी evil अर्थात बुरा या बुराई। इसलिए वहां स्त्री का स्तर हमेशा ही पुरुषों से कम रहा है।। हम अपनी संस्कृति से जो सीखते हैं उसी का पालन भी करते हैं और प्रचार भी और यही कारण है जब मध्यकाल में हमारे देश में बाहरी आक्रमण शुरू हुआ उसके बाद इस सोच का प्रचार होने लगा क्योंकि हमारे शासक इस सोच का पालन करते थे। और जैसा राजा वैसी प्रजा। यह सत्य है कि जो अंग्रेजी व्यापारी आए थे वह एक रानी के शासन में काम करते थे, परंतु इतिहास को यदि हम याद करके देखें तो कितने

गवर्नर जनरल या वायसराय स्त्री थी? एक भी नहीं। भले ही इनका सिर her highness के सम्मान में झुक जाता था परंतु प्राकृतिक रूप से अधिक बलवान होने का अहम इनके व्यवहार में झलकता था जो इन्हें एक कुशल शोषणकर्ता बनाता था। दुर्भाग्यवश जिस व्यवहार से स्वतंत्रता के लिए संग्राम लड़े गए, हमारी संस्कृति उसी व्यवहार के आधीन घुट रही है। हमने जिसे जड़ से काटना चाहा, वही हमारी चेतना में घर कर गई। और उसका नतीजा यह निकला की हमारे बीच एक ऐसे विषय की चर्चा हो रही है जिसका शीर्षक है स्त्री सशक्तिकरण।

यह हुई तत्कालीन परिस्थितियाँ। समकालीन काल में क्या अभी भी स्त्री सशक्तिकरण जैसे मुद्दों की आवश्यकता है? स्वतंत्रता के बाद के वर्षों से लेके अब तक ऐसे कई कानून बने जिसने इस बात का पूरा ध्यान रखा की स्त्री का पुनः सशक्तिकरण हो सके। अब आप पूछेंगे की बदलाव कहां आया? हम तो आज भी उसी चर्चा में मशगूल हैं। कागज़ पर तो आपने स्त्री को सशक्त बना दिया पर यथार्थ का क्या?

आज कल एक शब्द बड़े ही चर्चा का विषय हैं – feminism या नारीवाद। इस एक शब्द ने कैसे कैसे उधम मचाए हैं इसका तो एक अलग से व्याख्यान हो सकता है परंतु हम उसमे नहीं पड़ेंगे। मगर इसका सही अर्थ अवश्य कहना चाहेंगे की नारीवाद का अर्थ कभी भी समाज के स्त्रीयों का उत्थान नहीं रहा है। कभी भी स्त्री के स्तर को सबसे ऊंचा रखना नही रहा है। नारीवाद का सही मायनों में अर्थ है स्त्री और पुरुष को समान स्तर देना। और यह अर्थ हमारे संस्कृति के अनुरूप है। स्त्री और पुरुष दोनों ही समाज के दो अभिन्न पक्ष हैं। एक के भी अभाव में दूसरे का अस्तित्व संभव नहीं है। फिर एक का उत्थान या पतन समाज को कैसे चला सकता है? हमें समझना होगा की आज की यह परिस्थिति, आज की यह समस्या केवल प्राकृतिक रूप से बल होने का अहम ही नहीं बल्कि नारीवाद की अधजल गगरी भी है। जो मैं के एक दौड़ को आरंभ करती है जो अहंकार का भयावह रूप ले लेती है और फिर होता है समाज का पतन।

बुद्धि के विकास की आवश्यकता दोनो पक्षों को बराबर रूप से है। यदि हमें यह समझना जरूरी है की यह सत्य है की सामने वाला प्राकृतिक रूप से अधिक बलवान है और उसकी भूमिकाएं जो निश्चित है उन्हे कोई नही बदल सकता है तो सामने के पक्ष को भी यह समझना आवश्यक है की हमारी भूमिका का महत्व भी उतना ही है। वरना यह जीवन चक्र स्थिर हो जायेगा। जब हम बराबरी की बात करते हैं तो इसका अर्थ होता है संवैधानिक बराबरी – अर्थात प्रतिष्ठा, सम्मान एवं अवसर की समता। और हमारा यह भी समझना आवश्यक है की इस समता के लिए सशक्तिकरण की नहीं बल्कि विवेक एवं संवेदनशीलता की आवश्यकता अधिक है। विवेक एवं संवेदनशीलता हमारे चेतना के लिए ऐसे खाद और पानी हैं जिनसे वह विकृति से मुक्त हो विकसित होने की ओर अग्रसर होता है। हमें याद रखना होगा की यह संघर्ष शक्ति से कई अधिक संतुलन का है। वह संतुलन जो काफी समय से बिगड़ा हुआ है। वह संतुलन जो हमारे समाज एवं संस्कृति के उत्थान का आधार है। वह संतुलन जिसे यदि शीघ्र स्थापित नहीं किया गया तो उसका परिणाम विनाशकारी होगा।